भारतीय चिन्तन में द्वैताद्वैतवाद - एक विश्लेषण

महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी
उपाध्यक्ष - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान
जयपुर

भारतीय दार्शनिक चिन्तन का मूल आधार वेद है। दार्शनिकों की भी प्राय: यह मान्यता रही है, कि वेदों को प्रमाण मानना तत्त्वदर्शी चिन्तक ऋषि-महर्षियों की अपरोक्षानुभूति को ही प्रमाण मानना है। इस अपरोक्षानुभूति का मूल अध्यात्म है। अध्यात्म में आत्मचैतन्य को आधार माना गया है, अत: समग्र चिन्तन में आत्मचैतन्य ही केन्द्रीभूत तत्त्व है। इस पर उपनिषदों में जो व्यापक चिन्तन किया गया, वह वेदान्त के नाम से कालान्तर में जाना गया। वेदान्त के अनेक सम्प्रदाय हैं:- जैसे शंकराचार्य का अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद, मध्वाचार्य का द्वैतवाद, निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद इत्यादि।

आज हमारे चिन्तन का विषय है निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद। इस सम्प्रदाय के चिन्तन की मूलभित्ति द्वैत एवं अद्वैत दोनों के अस्तित्व को स्वीकार करना है। तात्पर्य यह है कि यदि हम अद्वैत का ही स्वीकार करें तो द्वैतभान की व्यावहारिक अनुभूति होने पर उसे कैसे नकार सकते हैं। दूसरा द्वैतभान की स्थिति में भी मूलत: एक का अनुभव होना अद्वैत के अस्तित्व का निश्चय कराता है। द्वैत एवं अद्वैत ये दोनों स्थितियाँ श्रुतिसम्मत हैं। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में 'नासदासीन्न सदासीत्तदानीम्' में सत् एवं असत् से भिन्न सत्ता का प्रतिपादन मूलत: अद्वैत को ही लक्षित करता है। यह जो द्वैतरहित सत्ता इंगित की गयी है, उसे ही उपनिषदों में ब्रह्म संज्ञा से कहा गया है। वहाँ ब्रह्म को सच्चिदानन्द भी कहा है। अर्थात् सत् चित् एवं आनन्द ये ब्रह्म के तीन अंश हैं। निम्बार्कमतानुसार आनन्दांश आत्मा है, चिदंश ज्ञान है तथा सदंश जीव है। आनन्दांश रूप आत्मा के साक्षात्कार के लिए सदंशरूपी जीव चिदंशरूप ज्ञान की अपेक्षा रखता है, अत: जीव ज्ञान एवं आत्मा में ब्रह्म ही क्रियान्वित हो रहा है।

द्वैत की स्थिति असत् की मान्यता पर आधारित है। सत् से भिन्न जो भी है, वह असत् है, अत: जीव से भिन्न

जड़ द्रव्य को असत् माना गया, किन्तु यह चिन्तन परवर्त्ती दार्शनिक चिन्तकों का है। प्राचीन दार्शनिकों ने श्रुत्याधारित द्वैतवाद को उपनिषदों में भी स्पष्ट रूप से देखा है। उपनिषदों में ब्रह्म के दो स्वरूपों की प्रतिपत्ति उपलब्ध होती है–प्रथमतया परब्रह्म की, दूसरे अपर ब्रह्म की। यहाँ एक ही ब्रह्म में स्वरूपभेद से द्वैत को उपस्थापित किया गया है। अब प्रश्न यह उठता है, कि भेदत्व से द्वैत लक्षित होता है या द्वैत के कारण भेदलक्षित होता है। इस प्रश्न के निराकरण के रूप में निम्बार्कमत में अपर ब्रह्म को जगत्रूप में ही स्वीकार किया गया है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्म एवं जगत् में जो भेद की प्रतीति हो रही है, वही यथार्थ रूप में द्वैत है, किन्तु ब्रह्म स्वयं ही जगद्रूप में परिणत हो जाता है, अत: जगत् ब्रह्मभिन्न है। ब्रह्म कारण हैं एवं जगत् कार्य है, अत: जैसे कारण से कार्य निष्पन्न होता है, वैसे ही ब्रह्म से जगत् निष्पन्न होता है तथा जैसे कार्य अपने कारण में उत्पत्ति से पूर्व भी विद्यमान होता है, वैसे ही ब्रह्म में जगत् भी अपनी उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान होता है। इस प्रकार जब वह कारण ब्रह्म कार्य जगत् में परिणत हो जाता है, तो वह भेद में अभेद सम्बन्ध से ही रहता है। जैसे वृक्ष का कारण बीज है और वह बीज उस वृक्ष में अभेद सम्बन्ध से विद्यमान होता है, वैसे ही ब्रह्मकारणरूप बीज भी जगत् कार्यरूपी वृक्ष में ही विद्यमान होता है। तदतिरिक्त उसकी सत्ता को ढूँढना निरी मूर्खता होगी।

वस्तुत: द्वैत और अद्वैत दोनों एक ही सत्य के दो पहलू हैं। उनमें से किसी एक को सही और एक को गलत नहीं कहा जा सकता। उक्त स्थितियों में ब्रह्मनित्यतावाद भी निराकृत नहीं होता, क्योंकि जैसे कार्य अपने कारण में उत्पत्ति से पूर्व एवं उत्पत्ति के बाद भी नित्य शाश्वत बना रहता है, वैसे ही जगत् भी नित्य एवं शाश्वत ही है। उसके उत्पत्ति एवं विनाश कार्य के उत्पत्ति–विनाश के तुल्य प्रतीति का विषय तो हो सकते हैं किन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता है, कि वह नित्य नहीं है, क्योंकि नित्य नहीं होता तो जगत् पुन: उत्पन्न नहीं होता। कारण में पूर्वतो विद्यमान कार्य ही उत्पत्ति के रूप में भासित होता है। यह अद्वैत को ही सिद्ध करता है, किन्तु अद्वैत की स्थिति प्राणियों के आभास का विषय न होने से अपरिज्ञात रहती है, किन्तु वह न केवल अनुमान से, अपितु आप्त प्रमाण से सिद्ध होने के कारण निराकृत नहीं की जा सकती। अत: अकेले द्वैत की स्थिति को स्वीकार करना तथा अद्वैत को स्वीकार न करना अथवा अकेले अद्वैत की स्थिति को स्वीकार करना तथा द्वैत की स्थिति को स्वीकार न करना दोनों ही औचित्यहीन प्रतीत होते हैं।

श्रुतिसम्मत विज्ञान में ब्रह्म एवं जगत् को प्रतिबिम्बात्मक सम्बन्ध से भिन्न कहा गया है तथा वहाँ भी स्वरूपाभिन्नत्व को स्वीकार किया गया है। इस विषय में पं. मधुसूदन ओझा लिखते हैं–

सूर्यस्य तोयप्रतिबिम्बवत्कचित्
तदीश्वरस्यप्रतिबिम्बसृष्टयः।
जीवाहितेऽल्पधियस्तमोऽधिका-
वरुद्धसंज्ञं तु जगत् क्षरे इमे।।

इससे भी स्पष्ट होता है कि ब्रह्म एवं जगत् में वस्तुतः अभेद होने पर भी क्षरत्व के कारण जगत् अक्षर ब्रह्म से भिन्न भासित होता है, अतः स्वरूपभेद की स्थिति भले ही वहाँ नहीं मानी गयी हो, किन्तु आधाराधेय के अन्तर से भेद को स्वीकार किया गया है, अतः अद्वैतवादी भी मूलतः द्वैत का निराकरण नहीं कर पाये हैं। निम्बार्क मत में इसके विपरीत यह सिद्धान्त प्रतिष्ठापित किया गया है, कि जगत् विविध परिवर्तनों एवं विकारों से ओतप्रोत होता है, किन्तु ब्रह्म इन परिवर्तनों अथवा विकारों से प्रभावित न होते हुए इस जगत् में विद्यमान रहता है। इस दृष्टि से ब्रह्म जगत् में तादात्म्य की कल्पना तो नहीं जा सकती, किन्तु इस आधार पर भी उसके अभेदत्व का निराकरण नहीं किया जा सकता।

जीव की संस्थिति से भी द्वैत एवं अद्वैत पूर्णतया भासित होता है। ब्रह्म की भाँति ही जीव भी अजन्मा, अनादि एवं अमर है ऐसा निम्बार्कमत में स्वीकार किया गया है। जन्मने मरने वाला तो शरीर है। उसके संयोग से जीव को जन्मापन्न मान लिया जाता है तथा उसके वियोग से ही मृत मान लिया जाता है। जीव में जो ईश्वरांश है, वह आत्मा से सम्पृक्त होकर ही शरीर में रहता है। जीव एवं आत्मा का द्वैत भी केवल कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व के निमित्त ही अवस्थित है, जिससे ब्रह्म न कर्तृत्व का अधिकारी होता है, न भोक्तृत्व का। जीव सदंश होने से अहंभावान्वित हो जाता है तथा कर्त्ता बन जाता है और इसी कारण वही कर्मफल का भोक्ता भी बनता है। ब्रह्म से इस रूप में जीव की भिन्नता है, किन्तु अहंरहित स्थिति में ब्रह्म से उसका अद्वैत भी सिद्ध होता है। इसी प्रकार आत्मा भले ही जीवसम्पृक्त हो, किन्तु वह कर्त्तापन एवं भोक्तापन से रहित होता है। फिर भी आत्मा का द्वैत अवस्थाओं में भासित होता है। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओं का उपभोक्ता जीवसम्पृक्त आत्मा है, अतः वह ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है। यह आत्मा एवं ब्रह्म का द्वैत है। जब आत्मा जीव से असंपृक्त हो जाता है, तब इन अवस्थाओं का भी भोक्ता नहीं रह जाता। उक्त स्थिति में उसका ब्रह्म से अद्वैत हो जाता है। इस प्रकार निम्बार्कमत में द्वैताद्वैत सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित कर आचार्य श्री ने भारतीय अध्यात्मचिन्तन को नवीन दिशा प्रदान की, जिसके प्रति आज भी दार्शनिक चिन्तक एवं श्रुति स्मृति के विद्वान् नतमस्तक हैं।